प्राचीन जैन हिंदी साहित्य में संत-स्तुति

❑ जैन साध्वी विजयश्री 'आर्या'
M.A. जैनसिद्धांताचार्य

संत संसार की श्रेष्ठविभूति है। संत पूजनीय एवं अनुकरणीय होते हैं। वे लोक का हित करने में संलग्न रहते हैं। लोक-मंगल की भावना उनके रोम-रोम में रमी हुई रहती है। संत स्वयं भी संसार सागर को तिरते हैं एवं अन्यों को भी तारते है। अतः संत-स्तुति अवर्णनीय है।.....परमविदुषी जैन साध्वी विजयश्री 'आर्या' एम.ए. अपने आलेख "प्राचीन जैन हिन्दी साहित्य में संत स्तुति" के माध्यम से संत-महिमा का दिग्दर्शन करवा रही हैं। — सम्पादक

भारतीय संस्कृति के प्राण : सन्त

भारतीय संस्कृति की किसी भी शाखा-प्रशाखा में सन्त का स्थान सर्वोपरि है। संत को परमात्मा का उत्तराधिकारी कहा जाता है। इसी कारण यहाँ सम्राट् की अपेक्षा संत को अधिक गौरव और आदर का स्थान प्राप्त है। सम्राट् का सत्कार अवश्य होता है, पर पूजा संत की ही होती है। भारत की जनता ने सदा संत जीवन की पूजा के साथ ही संत जीवन का अनुसरण भी किया है।

संत अपने लिए ही नहीं, विश्व के लिए जीता है। अतः संत की आत्मा में समूचा विश्व समाया हुआ है। विश्व की धड़कन संत के हृदय की धड़कन है। विश्व के हर प्राणी का संवेदन संत-हृदय का संवेदन है। भगवान् पार्श्व की परम कारुणिक भावना का चित्रण करते हुए एक कवि ने कहा है;

"जात्यैवैते परहितविधौ साधवो बद्धकक्षा"

अर्थात् साधुजन स्वभाव से ही परहित करने में सदा तत्पर रहते हैं। इसी बात को महाकवि तुलसीदासजी ने इन शब्दों मे कहा है;

"सरवर-तरवर-संतजन, चौथो बरसे मेह,
परमारथ के कारणे, चारों धारी देह।।"

जिनदासगणि महत्तर ने तो संतजनों को पृथ्वी के चलते-फिरते कल्पवृक्ष कहा है।[1] कल्पवृक्ष लौकिक अभिलाषाओं की पूर्ति करता है, वह भी कुछ समय के लिए। किंतु संतरूपी कल्पवृक्ष लोकोत्तर वैभव की वृद्धि करता है, जो अविनश्वर है।

श्रीमद् भागवत में कर्मयोग के उपदेष्टा श्रीकृष्ण कहते हैं – सन्तजन सबसे प्रथम देवता है, वे ही समस्त विश्व के बंधु हैं। वे विश्व की आत्मा हैं, मुझमें और संत में कोई अंतर नहीं है।[2]

सिक्खों के गुरू अर्जुनदेव ने संत को धर्म की जीती जागती मूरत कहा है। साधु की स्तुति वेदों ने भी गायी है। साधु के गुणों का कोई पार नही।[3]

---

१. विविह कुलुप्पणा साहवो कप्परुक्खा। — नन्दी चूर्णि २/१६
२. देवता बांधवा संतः, संतः आत्माऽहमेव च। — श्रीमद् भागवत ११-२६-३४
३. साधु की महिमा वेद न जाने
जेता सुने तेता बखाने,
साधु की शोभा का नहीं अंत,
साधु की शोभा सदा बे-अंत।। — गुरू अर्जुनदेव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कबीरदासजी ने संत को जाति-पांति से मुक्त, पंथ, काल, देश की सीमा से परे कहकर उनके ज्ञान से संत का महत्व प्रतिष्ठापित किया है।[1] संत की आत्मा हर क्षण संतुष्ट रहती है, उसे किसी चीज की चाह नहीं होती, अन्न भी वह उतना ही ग्रहण करता है, जितने से उदर निर्वाह हो।[2] संत गुणग्राही होता है, वह सद्भूत का ग्राहक है, अद्भूत का नहीं। संत का स्वभाव सूप की तरह होता है।[3]

संत रविदासजी ने तो संतों के मार्ग पर चलनेवाले मानव तक को प्रणाम किया है, क्योंकि संत के मन में विश्व के कल्याण की कामना कूट-कूट कर भरी होती है।[4]

आगम साहित्य में संत-स्तुति

जैन शास्त्रों में साधु के स्वरूप, उनके आचार गोचर, उनकी दिन चर्या, आदि का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। भगवती सूत्र में जहाँ अरिहंत और सिद्ध परमात्मा को परमेष्ठि पद में स्थान दिया है, वहीं साधु को भी परमेष्ठि में स्थान देकर उन्हें परम पूज्य मानकर नमस्कार किया गया है –

"नमो लोए सव्व साहूणं"

अर्थात् लोक के सभी साधुओं को नमस्कार है।

आवश्यक सूत्र में भी अरिहंत और सिद्ध के समकक्ष साधु को रखकर उसकी गरिमा में अभिवृद्धि की है। अरिहंत और सिद्ध के समान ही साधु को भी मंगल और उत्तम रूप कहकर उनका शरण ग्रहण करने का निर्देश किया गया है।[5]

उत्तराध्ययन सूत्र में स्थान-स्थान पर साधु के तप, त्याग, परिषह जय, दुष्कर ब्रह्मचर्य, और समत्व भाव की प्रशंसा मुक्त मन से गायी गई है। **साधु समता भाव का आराधक होता है।[6] वह सदा प्रसन्नचित्त रहता है।[7] वह दुष्ट व्यक्तियों द्वारा दिए गए प्रतिकूल उपसर्गों पर भी क्रोध नहीं करता। चंदन को जैसे कुल्हाडी से छेदन-भेदन करने पर भी शीतलता और सुगंध प्रदान करता है, उसी प्रकार साधु भी हर अवस्था में अपने गुणों की सुगंध ही बिखेरता है।[8] लाभ हो या हानि, सुख के साधन प्राप्त हो या दुःख के निमित्त, शुभ कर्मों का उदय हो या अशुभ कर्मों का उदय, कोई निंदा, अनादर या ताडन-तर्जन करे अथवा**

---

१. जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पड़ी रहन दो म्यान।।
– कबीर ग्रंथावली

२. संत न बांधे गट्ठि, पेट समाता लेइ,
सांई सु सन्मुख रहै, जह मांगो तह देइ।।
– वही,२०

३. साधु ऐसा चाहिए, जैसा सूप सुभाय।
सार-सार को गहि रहै, थोथा देय उड़ाय।।
– वही, २६

४. जो जन संत सुमारगी, तिन पाँव लागो रविदास,
संतन के मन होत है, सब के हित की बात,
घट-घट देखे अलख को, पूछे जात न पाँत।।
– गुरु रविदासजी की वाणी ।। १२,१७

५. साहू मंगलं, साहू लोगुत्तमा, साहू सरणं पवज्जामि
– आवश्यक सूत्र

६. समयाए समणो होइ – उत्तराध्ययन सूत्र

७. महप्पसाया इसिणो हवंति – वही।। १२।। ३१

८.अणिस्सिओ इहं लोए, परलोए अणिस्सिओ,
वासी चंदणकप्पो य, असणे अणसणे तहा।।
– वही, १९/९२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रशंसा और स्तुति करे, वह सदैव समभाव में स्थित रहता है।[1] साधु का दर्शन करने से परिणाम उत्तरोत्तर शुद्ध होते हैं। मोह कर्म का क्षय होता है, साधक श्रमण धर्म में उपस्थित होकर परंपरा से निर्वाण को प्राप्त करता है।[2]

तत्कालीन राजगृह के परम यशस्वी सम्राट् श्रेणिक महाराज भी तपस्तेज से आलोकित साधु के अपूर्व मुखमंडल को देखकर आश्चर्य चकित हो गए थे। उनके मुँह से सहसा आश्चर्यमिश्रित शब्द निकले[3] और मुनि के वैराग्यपूर्ण वचनों को सुनकर वे मार्गानुसारी बने थे। इसी प्रकार मिथिला नगरी के राजा नमि प्रव्रज्या पद पर आरूढ़ होने पर परीक्षा के लिए आये हुए इन्द्र निरस्तशंक होकर नमि राजर्षि की प्रशंसा करते हुए कहते हैं – "आश्चर्य है आपने क्रोध, मान, माया, लोभ को वश में कर लिया है। आपकी सरलता, मृदुता क्षमा एवं निर्लोभता को मैं नमन करता हूँ।"[4]

नंदीसूत्र में आचार्य देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण ने सुधर्मा स्वामी से प्रारंभ कर दूष्यगणि तक तथा अन्य भी पूज्य मुनि भगवंतों की छब्बीस गाथाओं में श्रद्धापूर्वक स्तुति करते हुए उन्हें नमन किया है।[5] इतना ही नही संतपद को इतना महत्व प्रदान किया गया है, कि ज्ञान का वर्णन करते हुए पाँच ज्ञान में मनःपर्यवज्ञान का अधिकारी मात्र श्रमण को ही बताया गया है। मति, श्रुत अवधि और केवलज्ञान गृहस्थपर्याय में रहकर भी प्राप्त किया जा सकता है, किन्तु मनःपर्यवज्ञान के लिए द्रव्य और भाव से श्रमण होना अनिवार्य है।[6]

आगम साहित्य के अतिरिक्त निर्युक्ति, चूर्णि और भाष्य साहित्य में साधुओं की स्तुति और उनको किया गया नमस्कार हजारों भवों से छुटकारा दिलाने वाला कहा है। इतना ही नहीं नमस्कार करते हुए आत्मा बोधि लाभ को भी प्राप्त हो सकती है।[7] और यदि साधु की भक्ति करते हुए उत्कृष्ट भावना आ जाए तो तीर्थंकर गोत्र का भी पुण्य उपार्जन कर सकता है।[8]

योगिराज आनंदघनजी के पदों में संत-स्तुति

हिंदी साहित्य के संत कवियों में १७वीं सदी के महान् योगिराज आनंदघनजी का नाम सुविख्यात है। उनके अनेकों पद आज भी साधकों द्वारा गाए जाते हैं। वे उच्च कोटि के विद्वान् ही नहीं अपितु सम्यक् आचारवंत एक महान् संत थे। वे साधुत्व का आदर्श समताभाव में मानते थे। इसी भाव को उन्होंने अपने शब्दों में अभिव्यक्त किया है –

"मान अपमान चित्त सम गिणे,
सम गिणे कनक पाषाण रे,
वंदक निंदक सम गिणे,

---

१. लाभालाभे सुहे दुक्खे, जीविए मरणे तहा,
समो निंदा पसंसासु, तहा माणावमाणओ।।
– वही १९/९१

२. साहुस्स दरिसणे तस्स, अज्झवसाणम्मि सोहणे,
मोहं गयस्स संतस्स, जाइसरणं समुप्पन्नं।।
– उत्तराध्ययन सूत्र १९/७

३. अहो वण्णो! अहो रूवं, अहो अज्जस्स सोमया,
अहो खंति! अहो मुत्ति! अहो भोगे असंगया।।

४. अहो ते निज्जिओ कोहो..... – वही ९/५६,५७

५. नन्दीसूत्र गाथा २५-५०

६. गोयमा! इड्ढिपत्त अपमत्तसंजय सम्मदिट्ठी
पज्जत्तग संखेज्ज वासाउय कम्मभूमिय गब्भ-
वक्कंतिय मणुस्साणं, मणपज्जवनाणं समुप्पज्जइ।"
– नंदीसूत्र, सूत्र १७

७. साहूणं नमोक्कारो, जीवं मोयइ भवसहस्साओ,
भावेण कीरमाणो, होइ पुणो बोहिलाभाए।।
– आवश्यक निर्युक्ति

८. .....संघ साधु समाधि वैयावृत्य करण.....
तीर्थकृत्वस्य।
– तत्त्वार्थसूत्र, ६/२३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इश्यो होय तूं जाण रे,
सर्व जग जंतु सम गिणे,
गिणे तृण मणि भाव रे,
मुक्ति संसार बेहु सम गिणे,
मुणे भव-जलनिधि नांव रे"[1]

समभाव ही चारित्र है, ऐसे समत्वभाव रूप निर्मल चारित्र का पालन करनेवाले मुनि संसार उदधि में नौका के समान है। श्रमण से अभिप्राय आत्मज्ञानी श्रमण से है; शेष उनकी दृष्टि में द्रव्यलिंगी है –

आतमज्ञानी श्रमण कहावै,
बीजा तो द्रव्यलिंगी रे ।।[2]

कविवर बनारसीदासजी की दृष्टि में संत-स्तुति

अध्यात्मयोगी कविवर बनारसीदासजी महाकवि तुलसीदासजी के समकालीन कवि थे। उनका समय वि.सं. १६४३-१६९३ तक का है। उनकी रचना **"अर्द्धकथानक"** हिंदी का सर्वप्रथम आत्मचरित ग्रंथ है। वैसे ही कवि की सर्वोत्कृष्ट रचना **"समयसार नाटक"** अध्यात्म जिज्ञासुओं के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। संत स्वभाव का और संत के लक्षण वर्णन करनेवाला उनका सवैया इकतीसा दृष्टव्य है –

कीच सौ कनक जाकै, नीच सौ नरेश पद,
मीच सी मिताई गरूवाई जाकै गारसी।
जहर सी जोग जाति, कहर सी करामाती,
हहर सी हौस, पुद्गल छवि छारसी।
जाल सौ जग विलास, भाल सौ भुवनवास,
काल सौ कुटुम्ब काज, लोकलाज लारसी।
सीठ सौ सुजसु जानै, बीठ सौ बखत मानै,
ऐसी जाकी रीत ताहि वंदत बनारसी ।।[3]

भावार्थ यह है कि संत सांसारिक अभ्युदय को एक आपत्ति ही समझते है। महाव्रत, समिति-गुप्ति का पालन करते हुए जो इंद्रिय विषयों से विरक्त होते है, वे ही सच्चे संत है।[4] कवि ने साधु के अट्ठाइस मूल गुणों का भी विस्तृत विवेचन किया है।

कवि भूधरदासजी की गुरु-स्तुति

भूधरदासजी ने दो गुरु-स्तुतियों की रचना की थी। वे दोनों ही " **जिनवाणी संग्रह**" में प्रकाशित है। जैनों में देव, शास्त्र और गुरु की पूजा प्राचीनकाल से चली आ रही है। गुरु के बिना न तो भक्ति की प्रेरणा मिलती है और न ज्ञान ही प्राप्त होता है। गुरु के अनुग्रह के बिना कर्म शृंखलाएँ कट नहीं सकती। गुरु राजवैद्य की तरह भ्रम रूपी रोग को तुरन्त ठीक कर देता है।

"जिनके अनुग्रह बिना कभी,
नहीं कटे कर्म जंजीर।
वे साधु मेरे उर बसहु,
मम हरहु पातक पीर।।"

गुरु केवल **"परोपदेशे पाण्डित्यं"** वाला नहीं होता, अपितु वह स्वयं भी इस संसार से तिरता है और दूसरों को भी तारता है। भूधरदासजी ऐसे गुरु को अपने मन में स्थापित कर स्वयं को गौरवान्वित मानते हैं। ऐसे गुरुओं

१. आनंदघन ग्रंथावली, शांतिनाथ जिन स्तवन
२. वही, वासुपूज्य जिन स्तवन
३. समयसार नाटक, बंध द्वार १९ वाँ पद
४. पंच महाव्रत पाले..... मूलगुण धारी जती जैन को।।
समयसार, चतुर्दश गुणस्थानाधिकार।।८०।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के चरण जहाँ भी पड़ते है, वह स्थान तीर्थ क्षेत्र बन जाता है।

इस विधि दुधर तप तपै,
तीनों काल मंझार,
लागे सहज सरूप में,
तन सो ममत निवार
वे गुरू मेरे मन बसो.....

कवि सुंदरदासजी की कृति में शूरवीर संत-स्तुति

१७वीं सदी के ही श्री सुंदरदासजी ने **'शूरातन अंग'** में शूरवीर साधु का वर्णन किया है। उनके अनुसार-

"जिसने काम-क्रोध को मार डाला है, लोभ और मोह को पीस डाला है, इंद्रियों के विषयों को कत्ल करके शूरवीरता दिखाई है। जिसने मदोन्मत्त मन और अहंकार रूप सेनापति का नाश कर दिया है। मद और मत्सर को निर्मूल कर दिया है। जिसने आशा तृष्णा रूपी पाप सांपिनी को मार दिया है। सब वैरियों का संहार करके अपने स्वभाव रूपी महल में ऐसे स्थिर हो गया है, जैसे कोई रण बांकुरा निश्चिंत होकर सो रहा है और आत्मानंद का जो उपभोग करता है, वह कोई विरल शूरवीर साधु ही हो सकता है" –

"मारे काम क्रोध सब, लोभ मोह पीसि डारे,
इंद्रिहु कतल करी, कियो रजपूतो है।।
मार्यो महामत्त मन, मारे अहंकार मीर,
मारे मद मच्छर हुं, ऐसो रण रूतो है।
मारी आशा तृष्णा पुनि, पापिनी सापिनी दोउ,
सबको संहार करी, निज पद पहुँतो है।
'सुंदर' कहत ऐसो, साधु कोउ शूरवीर,
वैरी सब मारि के, निचिंत होइ सूतो है।।"

- श्री सुंदरदास, सूरातन अंग २१-११

उपाध्याय समयसुंदरजी कृत संत-स्तुति पद

१७वीं शती के साहित्याकाश के जाज्वल्यमान नक्षत्र महामना समयसुंदर उपाध्याय ने सैकडों कवितायें, गीत आदि रचे हैं। उनके गीतों की विशालता के लिए एक उक्ति प्रसिद्ध है –

"समयसुंदर ना गीतड़ा,
भींता पर ना चीतरा
या कुंभे राणा ना भीतड़ा"

अर्थात् दीवार पर किये गये चित्रों का, राणा कुंभा के बनाए गए मकान और मंदिरों का जैसे पार पाना कठिन है, उसी प्रकार समयसुंदरजी के गीतों की गणना करना भी कठिन है।

संत स्तुति के रूप में भी उनके कई संग्रह है -

(i) **साधु गीत छत्तीसी** - में ४२ गीत है।

(ii) **साधु गीतानि** - में ४६ गीतों का संग्रह है।

(iii) **वैराग्यगीत** - यह प्रति अधूरी है, इसमें वैराग्य गीतों का संकलन है।

(iv) **दादागुरुगीतम्** - इसमें जिनदत्तसूरि और जिनकुशल सूरिजी के ६० गीत हैं।

(v) **जिनसिंहसूरि गीत** - इसमें अनेक गीत थे, किंतु २२ गीत ही प्राप्त हुए है।

'साधुगुणगीत' में रचित एक गीत सच्चे साधु के स्वरूप की झलक देता है –

तिण साधु के जाऊं बलिहारे,
अमम अकिंचन कुखी संबल, पंच महाव्रत जे धारे रे ।।१।।
शुद्ध प्ररूपक नइ संवेगी, पालि सदा पंचाचारे,
चारित्र ऊपर खप करि बहु, द्रव्य क्षेत्र काल अनुसारे ।।२।।

१ समयसुंदरकृति कुसुमांजलि। (संग्राहक) – अगरचंद नाहटा, प्र.सं.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गच्छवास छोडइ नहीं गुणवंत, बकुश कुशील पंचम आरइ;
'समयसुंदर' कहइ सौ गुरू साचउ, आप तरि अवरां तारइ।।३।।[1]

साधु के गुणों से संदर्भित उनका एक पद जो आसावरी राग पर गाया जाता है, इसमें छः काय जीव के रक्षक और २२ परिषह को जीतनेवाले परम संवेगी साधु को भक्तिपूर्वक वंदना की है।

धन्य साधु संजम धरइ सूधउ, कठिन दूषम इण काल रे।
जाव-जीव छज्जीवनिकायना, पीहर परम दयाल रे। ध.।१।
साधु सहै बावीस परिसह, आहार त्यइ दोष टालि रे।
ध्यान एक निरंजन ध्याइ, वइरागे मन वालि रे। ध.।२।
सुद्ध प्ररूपक नइ संवेगी, जिन आज्ञा प्रतिपाल रे।
समयसुंदर कहइ म्हारी वंदना, तेहनइ त्रिकाल रे।ध.।३।[1]

आचार्य श्री जयमलजी म. रचित साधु-वंदना

वि. सं. १८०७ में आचार्य जयमलजी महाराज ने 'साधु-वंदना' की रचना की। उसमें १११ पद्य हैं। इस रचना का इतना महत्व है कि वह जैन श्रावक-श्राविकाओं एवं साधकों की दैनिक उपासना का अंग बन गया है। यह काव्यकृति जहाँ सरल, भावपूर्ण और बोधगम्य है, वहीं संक्षेपशैली में भक्ति का अगाध महासागर भी है।

उक्त रचना में अतीतकाल में हुई अनंत चौबीसी (चौबीस तीर्थंकर) की स्तुति वर्तमानकालीन चौबीसी, महाविदेह क्षेत्र के तीर्थंकर एवं अन्य सभी अरिहंत भगवंतों की स्तुति करने के पश्चात् संत मुनिवृंद के गुणानुवाद हैं। इसमें आगम साहित्य से संबंधित सभी मोक्षगामी आत्माओं की नामोल्लेखपूर्वक स्तुति हैं।

उत्तराध्ययन, भगवती, ज्ञाताधर्मकथा, अंतकृतदशांग, अनुत्तरौपपातिक, सुखविपाकसूत्र में वर्णित अनेक महान् ज्योतिर्धर संतों के तप-त्याग-तितिक्षा, संयम-साधना एवं अंत में समस्त कर्म क्षय करके परमात्मपद प्राप्ति तक का वर्णन है। इसकी संक्षेपशैली का एक उदाहरण देखिए –

धर्मघोष तणां शिष्य, धर्मरुचि अणगार,
कीड़ियो नी करुणा, आणी दया अपार।
कड़वा तुंबानो कीधो सगळो आहार,
सर्वार्थ सिद्ध पहुँत्या, चवि लेसे भव पार।।[2]

उक्त दो दोहों में जैन आगम-साहित्य-वर्णित धर्मरुचि अणगार के लम्बे घटना प्रसंग को 'गागर में सागर' की भांति समाविष्ट कर दिया है। साथ ही कीड़ी जैसे तुच्छ प्राणी के प्रति करुणा वृत्ति की अभिव्यञ्जना कर करुण रस का उत्कृष्ट उदाहरण भी प्रस्तुत कर दिया है।

आचार्य श्री जयमलजी म. ने अनेकों स्तुति, सज्झाय, औपदेशिक पद और चरित को अपने काव्य का विषय बनाकर यत्र-तत्र साधु के गुणों का वर्णन किया है। आपकी भाषा राजस्थानी मिश्रित हिंदी है, आपकी कुछ रचनाएँ **'जय वाणी'** में संग्रहित है।

आचार्य श्री आसकरणजी म. कृत साधु-वंदना

आचार्य श्री आसकरण जी, म. की साधु वंदना को भी वही स्थान प्राप्त है, जो आचार्य श्री जयमलजी म. की साधु वंदना को है। आप ने जैन हिंदी साहित्य की अपार श्री वृद्धि की है, अनेकों खंडकाव्य और मुक्तक रचनाएँ आप द्वारा रची हुई मिलती हैं।

वि. सं. १८३८ में आपने 'साधु-वंदना' लिखी, जो जैन भक्ति साहित्य में काफी लोकप्रिय है।

संत निःस्वार्थ साधक होता है, वह भव सागर से स्वयं भी तैरता है और अन्य भव्य प्राणियों को भी जहाज के

१ समयसुंदरकृति कुसुमांजलि। संग्राहक – अगरचंद नाहटा, प्र.सं.
२ बड़ी साधु वंदना – पद्य ५१-५२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समान आश्रय प्रदान कर पार कर देता है, वह भी बिना कुछ लिये – इस भाव को कवि ने अपनी सरल सुबोध भाषा में अभिव्यंजित किया है, देखिये –

जहाज समान ते संत मुनिश्वर,
भव्य जीव बेसे आय रे प्राणी।
पर उपकारी मुनि दाम न मांगे
देवे मुक्ति पहुंचाय रे प्राणी।।
साधुजी ने वंदना नित-नित कीजे....।।[1]

साधु मात्र उपदेशक ही नहीं होता वरन् ज्ञानी संयमी, तपस्वी एवं सेवाभावी भी होता है। किसी संत में किसी गुण की प्रधानता है, तो किसी में किसी अन्य गुण की।

एक-एक मुनिवर रसना त्यागी
एक-एक ज्ञान-भंडार रे प्राणी
एक-एक मुनिवर वैयावच्चिया-वैरागी
जेहनां गुणां नो नावे पार रे प्राणी
साधुजी ने वंदना नित-नित कीजे....।।[2]

इस प्रकार संत जीवन पर श्रद्धा और पूज्यभाव प्रगट कराने वाले ये १० पद आचार्य जी ने 'बूसी' गाँव (राजस्थान) के चातुर्मास में बनाये हैं और स्वयं को **"उत्तम साधु का दास"** कहकर गौरवान्वित किया हैं।[3]

कवि श्री हरजसरायजी की साधु गुणमाला

संवत् १८६४ में पंजाब के महाकवि श्री हरजसराय जी ने साधु गुणमाला १२५ पद्यों में रची। इस रचना में मुनि के गुणों का उत्कृष्ट काव्य शैली में वर्णन किया गया है।

साधु के अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह प्रधान जीवन शैली तथा पंचेन्द्रिय संयम, क्रोध, अहंकार कपट और लोभ रूपी महाभयंकर विषधर से मुक्त मुनि-धर्म को जिस अलंकारिक ढ़ंग से वर्णन किया है, उसे पढ़कर कवि के अगाध ज्ञान, संतों के प्रति अपूर्व निष्ठा एवं आदरभाव का भी सहज ही परिचय प्राप्त हो जाता है। काना, मात्रा से रहित एक पद्य दर्शनीय है -

कनक रजत धन रतन जड़त गण
सकल लषण रज समझत जनवर
हय गय रथ भट बल गण सहचर
सकल तजत गढ़ वरणन मयधर।
वन-वन बसन रमण सत गत मग
भव भय हरन चरण अघ रज हर
उरग अमर नर करन हरष जस
जय-जय भण भव जनवर यशकर।।१२१।।

आपकी कृतियों के परिशीलन से यह पता चलता है कि आप एक अद्वितीय साहित्य स्रष्टा तथा विलक्षण प्रतिभा संपन्न पुरुष थे। साधु गुणमाला का एक दोहा देखिये जिसमें प्रत्येक शब्द का आदि अक्षर क्रमशः १२ स्वरों से प्रारंभ होता है।

अ	आ	इ	ई	उ	ऊँ	ए
लख	दि	स	श की	त्तम	चो	क
ऐ	ओ	औ		अं	अः	
सो	ढ़क	र नहीं		त न	जग टेक।।	

अलख आदि इस ईश की, उत्तम ऊँचो एक।
ऐसे ओढ़क और नहीं, अंत न अः जग टेक।।

एक दोहे में अनुप्रास की छटा दर्शनीय है -

मुनि मुनिपति वरणन करण
शिव शिवमग शिव करण

१. छोटी साधु वंदना, पद ६ २. छोटी साधु वंदना, पद ४ ३. छोटी साधु वंदना, पद १०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जस जस ससियर दिपत जग
जय-जय जिन जन शरण।।

इस दोहे में **यमक अलंकार** भी है साथ ही सारे वर्ण लघु हैं।

आपकी कल्पनाशक्ति बड़ी तीव्र थी, साथ ही अभिव्यंजना शैली भी बहुत ही स्पष्ट प्रभावोत्पादक है।

मन को जीतना यद्यपि कठिन है परन्तु युक्ति के आगे कठिन नहीं, इसी विषय को दृष्टान्त द्वारा समझते हुए कवि कहते हैं -

ताम्र करे कलधौत रसायन,
लोह को पारस हेम बनावे।
औषध योग कली[1] रजतोत्तम,
मूढ़ सुधी संग दक्ष कहावे।
वैद्य करे विष को वर औषध,
साधु असाधु को साधु करावे।
त्यों मन दुष्ट को सुष्ट करे,
ऋषि ता गुरु के गुण सेवक गावे ।।५०।।

साधु गुणमाला के अतिरिक्त आपकी 'देवाधिदेवरचना' और 'देवरचना' ये दो काव्य कृतियाँ और उपलब्ध होती हैं।

पूज्यपाद श्री तिलोक ऋषिजी महाराज द्वारा रचित साधु पद सवैया

आप अपने समय के उत्कृष्ट कोटि के संत थे। वि.सं. १९०४ में जन्म लेकर १९४० कुल ३६ वर्ष की आयु में स्वर्गवास हो गया। कहा जाता है, कि १० वर्ष की रचना अवधि में आपने लगभग ६५ हजार काव्य पद लिखे। सभी रचनाएँ गेय हैं तथा विविध रस और अलंकार युक्त है।

पंच परमेष्ठी वंदना जैन समाज में उतनी लोकप्रिय हुई कि देवसी और रायसी आवश्यक में उसे प्रतिदिन पढ़ा जाता है। उदाहरण स्वरूप साधु-वंदना का यह सवैया देखिये –

आदरी संयम भार, करणी करे अपार,
समिति गुपति धार, विकथा निवारी है।
जयणा करे छ काय, सावद्य न बोले बाय,
बुझाय कषाय लाय, किरिया भंडारी है।।
ज्ञान भणें आठो याम, लेवे भगवंत रो नाम,
धरम को करे काम, ममता निवारी है।।
कहत तिलोक रिख, करमो को टाले विष
ऐसे मुनिराज जी को, वंदना हमारी है।।

साधु का त्याग सर्प की कैंचुली के समान है, जिसका त्याग कर दिया, उसे पुनः दृष्टि दौड़ाकर देखते भी नहीं, मात्र प्रभु के ध्यान में लीन रहते हैं,

"कंचुक अहि त्यागे, दूरे भागे,
तिम वैरागे, पाप हरे।
झूठा परछंदा, मोहिनी फंदा,
प्रभु का बंदा, जोग धरे।।
सब माल खजीना, त्यागज कीना,
महाव्रत लीना, अणगारं।।
पाले शुद्ध करणी, भवजल तरणी,
आपद हरणी, दृष्टि रखे।
बोले सतवाणी, गुप्ति ठाणी
जग का प्राणी-सम लखें।
शिवमारग ध्यावे, पाप हटावे,
धर्म बढ़ावे, सत्य सारं।।[2]

१. रांगा
२. पंच परमेष्ठी छंद - १०वां ११ वां पद

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री तिलोकऋषि जी म. ने अनेकों लावणी, सज्झाय, चरित, रास और मुक्तक रचनाएँ की हैं। 'साधु छंद' में भी साधु के गुणों का दिग्दर्शन कराया है।

उपसंहार

उक्त काव्य रचनाओं के अलावा श्री मनोहरदास जी म. की संप्रदाय के श्री रत्नचंद जी म. ने भी वि. सं. १८५० से वि.सं. १६२१ के मध्य अनेक ग्रंथों की रचना की, जिसमें 'सती स्तवन' पद्य अत्यंत सरस भाषा में लिखा है।

अध्यात्म जगत के साधक श्रीमद् राजचंद्रजी ने सद्गुरु पर अनेक दोहे/पद रचे हैं। संत का अन्तर और बाह्य चारित्र संसार-दुःख का नाश करनेवाला है।[1] मुनि मोह, ममता और मिथ्यात्व से रहित होता है, श्रीमद् जी ने ऐसे क्षमावान् मुनि को बार-बार नमन किया है –

माया मान मनोज मोह ममता
मिथ्यात्व मोडी मुनि।
धोरी धर्म धरेल ध्यान धर थी
धारेल धैर्ये धुनि।
छे संतोष सुशील सौम्य समता
ने शीयले चंडना
नीति राय दया क्षमाधर मुनि।
कोटि करूं वंदना।

ऐसे एक नहीं अनेक पद्य श्रीमद् जी के गुरु भक्ति से भरे पड़े हैं। ये सारे पद्य गुजराती भाषा में रचित है।

श्रीमद् पर ही श्रद्धा रखने वाले श्री सहजानंद जी म. ने साधु-स्तुति, गुरु भक्ति पर अनेक पद लिखे हैं जो **'सहजानंद पदावली'** में है।

इसी प्रकार जैन दिवाकर श्री चौथमल जी म, श्री खूबचन्द जी म. आदि अर्वाचीन महान् जैनाचार्यों और संतों ने जैन भारतीय भंडार को स्तुति, स्तोत्र आदि साहित्य से इतना भरा है, कि उसे प्रस्तुत करने के लिये एक अलग शोध-ग्रन्थ की जरूरत है।

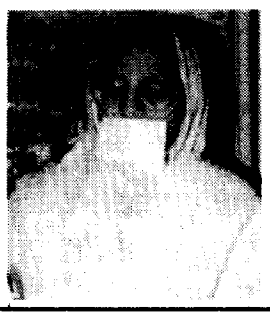

❑ **महासती विजयश्री 'आर्या' जैन समाज की विदुषी साध्वी रत्न हैं। आपने एम.ए.एवं सिद्धांताचार्य की श्रेष्ठ उपाधियां प्राप्त की तथा अपने शिक्षा काल में स्वर्णपदक प्राप्त किये। आप प्रतिभावान तथा मेधावी हैं। आप एक श्रेष्ठ कवयित्री एवं कुशल लेखिका हैं। बृहद्काय "महासती केसरदेवी गौरव ग्रन्थ" का संपादन आपकी साहित्य-निष्ठा एवं पुरुषार्थ का प्रतीक है। अब तक आपकी आठ कृतियां प्रकाशित हो चुकी हैं। जैन साहित्य जगत् को आप जैसी महासाध्वी से अनेक अपेक्षाएं हैं। – सम्पादक**

१. बाह्य चरण सुसंतना टाले जननां पाप।
अंतर चारित्र गुरुराज नुं, भागे भव संताप ।।
– श्रीमद् राजचंद्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org